गेहूँ एवं जौ संदेश

वर्ष 4 | अंक 1 व 2 | जनवरी-दिसम्बर, 2015

फोटो: राजेन्द्र कुमार शर्मा

गेहूँ के प्रमुख हानिकारक कीट एवं उनका प्रबंधन

सुभाष कटारे, पूनम जसरोटिया, एम.एस. सहारण एवं अनिल खिप्पल

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व भर में गेहूँ को सौ से अधिक कीटों द्वारा नुकसान पहुँचता है। इन में कुछ कीट गेहूँ को अपेक्षाकृत कम प्रभावित करते हैं अथवा कुछ ही विशिष्ट क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जबकि अन्य कीट जैसे पत्ती एवं जड़ का माहूँ और दीमक, गेहूँ को गम्भीर क्षति पहुँचाते हैं। इसके अलावा धान में पाया जाने वाला गुलाबी तना छेदक भी गेहूँ को हानि पहुँचाता है। गेहूँ को 5–10 प्रतिशत हानि कीटों, रोगों अथवा सूत्रकृमियों द्वारा होती है जिसके कारण गेहूँ के दाने एवं बीज की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। आजकल किसान अपनी फसल से अधिक से अधिक उत्पादन लेना चाहता है जिसके लिए वह रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कीट नियंत्रण के लिए करता है। लेकिन कीट नियंत्रण से पहले कीट की सही पहचान एवं उनके द्वारा होने वाली क्षति के बारे में जानकारी होना बहुत आवश्यक है। जानकारी न होने की स्थिति में किसान गलत दवा का उपयोग कीट नियंत्रण के लिए कर सकता है। गलत दवा के उपयोग या उसका अधिक मात्रा में उपयोग करने से पर्यावरण एवं स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। निम्नलिखित जानकारी से, किसान गेहूँ में पाए जाने वाले प्रमुख कीटों की सही पहचान एवं उनके द्वारा होने वाली क्षति की सही तरीके से रोकथाम कर सकते हैं।

पत्ती का माहूँ या चेपा (रोफेलोसिफम मेडिस, रोफेलोसिफम पेडी, साइटोबियोन अवेनी):– यह कीट भारत के सभी गेहूँ उत्पादन करने वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। इस कीट का शरीर कोमल एवं पीले हरे रंग का होता है व शरीर के पिछले भाग पर गहरे हरे रंग की पट्टी पाई जाती है। इसकी मादा जीवित अर्भक को जन्म देती है, जो कि अपने जीवन काल में कई बार त्वचा निर्मोचन कर वयस्क बनती है। पत्ती माहूँ कोमल पत्तियों एवं बालियों का रस चूसते हैं जिससे फसल का उत्पादन कम एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है। यह कीट गेहूँ, जौ, जई इत्यादि फसलों पर आक्रमण करता है इसका प्रकोप ठंडे एवं मेघाच्छादित मौसम में ज्यादा होता है। इस कीट का प्रकोप होने पर गेहूँ की फसल में 10–50 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी हो सकती है।

पत्ती का माहूँ या चेपा

कीट प्रबंधन

1. जब कीट की संख्या आर्थिक क्षति स्तर (ई.टी.एल.) को पार कर जाए तब डायमेथोएट 30 ई.सी., अथवा ऑक्सीडेमेटोन मिथाईल 25 ई.सी. नामक दवा का 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
2. जब पत्ती माहूँ का आक्रमण प्रारम्भ हो रहा हो उस समय फसल की सीमा पंक्तियों (बोर्डर रो) पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल दवा का 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर, छिड़काव करें। यह प्रक्रिया फसल में लाभदायक एवं मित्र कीटों को पनपने एवं संरक्षण करने में सहायक होती है जो कि पत्ती माहूँ का जैविक नियंत्रण करते हैं।

जड़ का माहूँ (रुट एफिड) (रोपेलोसिफम राउफिएब्डोमिनेलिस)

मध्य क्षेत्र विशेषकर मध्य प्रदेश में इस कीट की गम्भीर समस्या है। इसके साथ ही यह भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र एवं उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में भी देखा गया है। जड़ माहूँ हल्के हरे रंग का होता है। यह कीट गेहूँ, जौ एवं जई इत्यादि फसलों के, भूमिगत तने एवं जड़ों को खाकर नुकसान पहुँचाता है। जड़ माहूँ कॉलोनी के रुप में रहकर जड़ों से रस चूसते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ सूखने लगती है एवं ऐसे पौधों को उखाड़कर देखने पर रुट एफिड की कॉलोनी जड़ों में आसानी से देखी जा सकती है। प्रभावित पौधों के आस–पास चींटियां सक्रिय हो जाती हैं जो कि मीठे चिपचिपे पदार्थों को खाती हैं एवं रुट एफिड को स्वस्थ पौधों में फैलाने का कार्य करती हैं। अधिक तापमान और जीरो टिलेज तकनीक इस कीट की सक्रियता को और बढ़ाते हैं। इस कीट के द्वारा फसलों में 30 प्रतिशत तक नुकसान देखा गया है।

जड़ का माहूँ

कीट प्रबंधन

1. गेहूँ की देरी से उगाई जाने वाली, सहिष्णु प्रजाति जैसे डी.एल. 788–2 का प्रयोग करें।
2. बुआई से पहले बीज का उपचार इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. 0.7 ग्राम सक्रिय तत्व अथवा थिओमेथोज़म 1.0 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति किलो ग्राम बीज की दर से करना चाहिए।
3. कीट के प्रभावी निमंत्रण हेतु बुआई के 21 दिन बाद नीम तेल 3 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर सिंचाई के साथ प्रयोग करें।
4. गेहूँ बुआई के 21 दिन बाद क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. दवा 0.20 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर सिंचाई के साथ प्रयोग करने पर इस कीट का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

दीमक (ओडोन्टोटरमिस ओवेसस और माइक्रोटरमिस ओवसेसी)

दीमक उत्तर एवं मध्य भारत में गेहूँ फसल का प्रमुख हानिकारक कीट है। इस के प्रकोप से प्रारंभिक अवस्था में 25 प्रतिशत तक पौधे नष्ट हो जाते हैं। दीमक मध्यम आकार के कोमल शरीर वाले, पतले, क्रीम अथवा गहरे हरे रंग के होते हैं। यह कीट असिंचित व हल्की भूमि में अधिक नुकसान पहुँचाता है। दीमक जमीन में सुरंग बनाकर रहती है और पौधों की जड़ों को काटकर क्षतिग्रस्त कर देती है। इसके प्रकोप से पौधे धीरे–धीरे सूखने लगते हैं और ऊपर खींचने पर आसानी से निकल जाते हैं। इसका प्रकोप खेत में जगह–जगह पर होता है, जिसे आसानी से पहचाना जा सकता है।

दीमक से प्रभावित गेहूँ की फसल

कीट प्रबंधन

1. खेत के आस–पास दीमक द्वारा बनाए गई बांबियों को खोदकर अथवा धूम्रक विष जैसे मिथाईल ब्रोमाइड से रानी दीमक को नष्ट कर देना चाहिए।
2. बुआई पूर्व बीजों का उपचार क्लोरपायरीफॉस 0.9 ग्रा. सक्रिय तत्व (4.5 मि.ली./कि. बीज) की दर से करना चाहिए।
3. इमिडाक्लोप्रिड 0.6 ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुआई करने से प्रभावी नियंत्रण मिलता है।
4. दीमक का प्रकोप अधिक होने पर क्लोरपायरीफॉस 20 ई. सी. दवा की 4.00 लीटर मात्रा 50 कि.ग्रा. मिट्टी या बालू/रेत में मिलाकर प्रति हैक्टर प्रयोग करें।

गुलाबी तना छेदक (सिसेमिया इनफरेंस)

गुलाबी तना छेदक धान का एक जाना पहचाना कीट है परंतु जलवायु परिवर्तन जैसे कि नवम्बर और दिसम्बर में औसत तापमान बढ़ने से कीट का प्रकोप गेहूँ फसल में भी होने लगा है। वर्तमान में इस कीट का प्रकोप धान गेहूँ फसल पद्धति क्षेत्रों; जहाँ पर गेहूँ की फसल जीरो टिलेज विधि से बोई जाती है, में अधिक देखा गया है। इस कीट का वयस्क छोटा, भूरे रंग का एवं इल्ली छोटी, गुलाबी रंग की, चिकनी और

गुलाबी तना छेदक

शरीर पर गहरे धब्बे पाए जाते हैं। इस कीट का प्रकोप गेहूँ, मक्का, गन्ना, ज्वार, धान और जई इत्यादि पर होता है। फसल बढ़वार की अवस्था में इसकी इल्ली एक सप्ताह तक पत्ती को खाती है, उसके पश्चात् तने में छेदकर अंदर ही अंदर तने को खाती है। इस कारण तने में मृत स्थान (डेड हर्ट) बन जाते हैं एवं फसल पकने की अवस्था में बाली सफेद हो जाती है। जिसे आसानी से बाहर खींचा जा सकता है

कीट प्रबंधन

1. प्रभावित पौधों को निकाल कर नष्ट कर देने से कीट का प्रकोप कम होता है।
2. खड़ी फसल में कीट का प्रकोप दिखाई देने पर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 3 मि.ली. अथवा क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 4 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

हाइड्रोपोनिक्स : अजैविक तनाव सहिष्णुता का अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक विधि

रिंकी एवं बृज किशोर मीणा

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

अजैविक तनाव सहिष्णुता तथा उससे संबंधित समस्याओं का क्षेत्र अनुसंधान में बहुत ही विशाल है। वैश्विक जलवायु के बदलते हुए मिजाज के कारण, फसलों पर सूखा, लवणता, भारी धातुओं की विषाक्तता, पोषक तत्वों की कमी का अध्ययन करना, भविष्य में सुरक्षित एवं टिकाऊ कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में हाइड्रोपोनिक्स एक ऐसी वैज्ञानिक विधि है, जो रुपात्मक, जैवरासायनिक और आण्विक स्तर पर अंतर एवं अंतः प्रजातीय विविधताओं की पहचान करने के लिए शोधकर्ताओं के लिए कारगर साबित हो सकती है।

खारापन / लवणता

लवणता वैश्विक अन्न उत्पादन को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख अजैविक तनाव है। हाइड्रोपोनिक्स लवणता सहिष्णुता के अध्ययन के लिए बहुत ही उपयोगी है। किन्तु लवणीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए सोडियम क्लोराइड का एकल, उच्च खुराक परासरण अधिक तनाव का कारण बन कर पौधों को मार सकता है। अतः सोडियम क्लोराइड की सांद्रता, प्रयोग के उद्देश्य, पौधों की प्रजाति तथा खुराक की निर्णायक (क्रिटिकल) माँग के अनुरुप होनी चाहिए। लवणता आधारित प्रयोगों में कैल्शियम (Ca^{++}) ऑयनों की अतिरिक्त आवश्यकता होती है क्योंकि अधिक लवणता से पौधों में कैल्शियम की कमी हो जाती है।

सूखा

सूखा फसलों के लिए एक जटिल तनाव है, जिसका पौधों की वृद्धि व विकास प्रणाली पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सूखा के प्रभावों को हाइड्रोपोनिक्स के अतिरिक्त दूसरी विधियों द्वारा प्रभावी तरीके से नहीं समझा जा सकता। इस प्रणाली में मिश्रित लवणों, सोडियम क्लोराइड, मैनीटोल, सोरबीटोल, पोली इथाइलीन ग्लाइकोल (PEG) का प्रयोग करके पौधों पर सूखे का प्रभाव समझा जा सकता है। हाइड्रोपोनिक्स के माध्यम से, अजैविक तनाव को अधिक से अधिक समानीकृत एवं नियंत्रित करके प्रयोग की प्रमाणिकता को बढ़ाया जा सकता है जबकि मृदा आधारित प्रयोगों में यह संभव नहीं है।

पोषक तत्वों की कमी

हाइड्रोपोनिक्स अध्ययन से पौधों में आवश्यक पोषक तत्वों की अनिवार्यता की पहचान आसानी से की जा सकती है। हाल ही में निकेल (Ni) को आवश्यक सूक्ष्म तत्व के रुप में हाइड्रोपोनिक्स के माध्यम से मान्यता मिली है। इस विधि द्वारा सूक्ष्म तत्वों की कमी से पौधों की वृद्धि एवं विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का आसानी से अध्ययन किया जा सकता है। इसके साथ ही पोषक तत्वों की कमी के कारण एवं उनको ग्रहण करने में ली गई गतिज ऊर्जा को प्रभावित करने वाले कारकों को भी समझा जा सकता है।

हाइड्रोपोनिक्स के उपयोग द्वारा पौधों में सूक्ष्म तत्वों की ग्रहण दक्षता तथा कमी के लक्षणों का अध्ययन

गैर विनाशकारी विधि द्वारा संयंत्र आकृति विज्ञान का अध्ययन

मृदा आधारित प्रणाली की तुलना में हाइड्रोपोनिक्स के लाभ

1. अधिक एकरुपता और उच्च स्तर का नियंत्रण जो प्रयोगों के परिणामों की प्रमाणिकता को बढ़ाता है।
2. गैर–विध्वंसकारी (नॉन डिस्ट्रक्टिव) माप आसानी से लिए जा सकते हैं व पौधों को पुनः रोपित किया जा सकता है।
3. पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता के आधार पर जननद्रव्य की छंटनी कर प्रजनन कार्यक्रम को आसान बनाया जा सकता है।
4. पौधों में जड़ों के आकारकीय (मॉर्फोलॉजी) लक्षणों को आसानी से समझा जा सकता है।

लॉजिंग : समस्याएँ एवं प्रबंधन

रिंकी, माम्रुथा एच. एम., अनिल खिप्पल एवं आशुतोष श्रीवास्तव
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

पौधे के कल्म की ऊर्ध्वाधर स्थिति से स्थायी विस्थापन (या झुक जाना), लॉजिंग कहलाता है। सामान्यतः बारिश तथा तीव्र गति की हवाएँ लॉजिंग का प्रमुख कारण हैं, किन्तु यह एक जटिल प्रक्रिया है जो स्थलाकृति (टोपोग्राफी), मिट्टी के प्रकार तथा फसल प्रबंधन इत्यादि द्वारा भी प्रभावित होती है। अधिक उर्वरता की स्थिति में भारतीय गेहूँ की किस्में लॉजिंग के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। इसलिए लॉजिंग के कारण उत्पादन के घटने का खतरा बना रहता है। गेहूँ की फसल में दाना बनने के समय पर हवा की तेज गति लॉजिंग की समस्या को और भी अधिक जटिल बना देती है। लॉजिंग जल तथा पोषक तत्वों को ग्रहण करने की प्रक्रिया के साथ भी हस्तक्षेप करती है, प्रकाश अवरोध को कम करती है, फसल के रोगों को बढ़ावा देती है, जिसके कारण कटाई प्रक्रिया कठिन हो जाती है तथा कटाई की लागत भी बढ़ जाती है। लॉजिंग उत्पादकता के साथ–साथ गुणवत्ता को भी कम कर देती है।

लॉजिंग मुख्यतः दो प्रकार की होती है। :–
1) तना (कल्म) लॉजिंग 2) जड़ लॉजिंग

तना/कल्म लॉजिंग में जड़ें मजबूती के साथ मिट्टी में पकड़ बनाए रखती हैं किन्तु हवा की तेज गति तने की सबसे नीचे वाली पोरी को कमजोर बना देती हैं जिससे पौधा झुक जाता है। किन्तु जड़ लॉजिंग की संभावना तब बनती है जब जडें मिट्टी में अपनी पकड़ मजबूत नहीं बना पाती और पौधे के गिरने का कारण बन जाती हैं। यह मुख्यतः मिट्टी के प्रकार एवं जड़ संरचना पर निर्भर करती है। लॉजिंग गेहूँ की उपज को 80% तक घटा सकती है। अनाज वाली फसलों में परिपक्वता के समय लॉजिंग की संभावनाएँ अधिक रहती है।

लॉजिंग के कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार हैं

1. नाइट्रोजन उर्वरक का लॉजिंग पर प्रभाव

अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग गेहूँ में लॉजिंग का एक मुख्य कारण है क्योंकि अधिक नाइट्रोजन खुराक पौधे के तने की लम्बाई को 10–25% तक बढ़ा सकती है। नाइट्रोजन उर्वरक का अधिक प्रयोग, फुटाव करने तथा वनस्पति विकास को बढ़ाने के साथ–साथ बुनियादी आसंधि (नोड) के लिए प्रकाश अवरोध को कम कर देता है, जिसके कारण पौधे का तना दुर्बल हो जाता है तथा लॉजिंग की स्थिति पैदा हो जाती है। इसके साथ ही अधिक नाइट्रोजन तना : जड़ के अनुपात को बढ़ा देती है जो कि लॉजिंग के लिए बहुत अनुकूल है।

2. उर्वरकों का कल्म के गुणों पर प्रभाव

कल्म रचना लॉजिंग प्रतिरोधन में मुख्य भुमिका निभाती है। खेतों में नाइट्रोजन की मात्रा तथा जल घुलनशील कार्बोहाइड्रेटस (WSC) की सांद्रता का सीधा संबंध है। WSC की कम मात्रा लॉजिंग को बढ़ावा देती है जबकि सेल्यूलोज : लिग्निन का अधिक अनुपात तथा सिलिका की उच्च मात्रा लॉजिंग प्रतिरोधन में सहायक है।

3. प्रबंधन प्रथाओं की लॉजिंग में भूमिका

कुछ प्रबंधन प्रथाएँ भी लॉजिंग के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने में सहायक है। जैसे – बीज और उर्वरक को खेत में बिखेरने के बाद रोटरी टिलर का उपयोग, पिछली फसल, खाद, जैव पदार्थों से उपलब्ध हुई नाइट्रोजन का न्यूनानुमान इत्यादि तने को कमजोर बना कर लॉजिंग को बढ़ावा देते हैं।

4. टिलरों की सघनता

टिलरों (पौधों) की अधिक आबादी तने को कमजोर बनाकर फसल को जल्दी गिरा सकती है, गिरी हुई फसल नमी को सोखकर, बिमारी के लिए अनुकूल सूक्ष्म वातावरण प्रतिस्थापित करती है जो कि अन्न की गुणवत्ता को घटाता है।

लॉजिंग प्रबंधन

1. कम ऊंचाई वाली लॉजिंग प्रतिरोध प्रजातियों का उपयोग करना।
2. उर्वरक नाइट्रोजन का अनुशंसित मात्रा में प्रयोग करना।
3. लॉजिंग को नियंत्रित करने के लिए इथोफान, क्लोरमेक्वाट, क्लोराइड (साइकोसिल), ट्राईनेक्सापैक–इथाइल जैसे पादप विकास नियामकों का प्रयोग करना।
4. विभाजित नाइट्रोजन खुराक का प्रयोग लॉजिंग की संभावना को कम करता है।
5. बीज दर को घटा कर भी लॉजिंग प्रतिरोधन को बढ़ाया जा सकता है। मृदा परीक्षण के समुचित उपयोग द्वारा मिट्टी के पोषक तत्वों का संतुलन कल्म लॉजिंग की दर को कम करता है।

छिलका रहित जौ : गुणों का भण्डार

दिनेश कुमार, जोगेन्द्र सिंह, स्नेह नरवाल, अनिल खिप्पल, योगेश कुमार एवं अजीत सिंह खरब

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ के दाने दो प्रकार के होते हैं, छिलका सहित व छिलका रहित। सामान्यतः छिलका सहित जौ अधिक प्रचलित है तथा इसका उपयोग माल्ट बनाने व पशु चारा इत्यादि में अधिक होता है। माल्ट बनाने हेतु जौ का चुनाव होने का एक कारण यह है कि इसके दाने के साथ छिलका चिपका रहता है। छिलका रहित जौ का उपयोग अधिकतर ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों में किया जाता हैं तथा मुख्यतः वह लोग इसे खाने में प्रयोग करते हैं। छिलका रहित जौ, दिखने में गेहूँ के दानों जैसा लगता हैं। इसका फायदा यह है कि उपयोग से पूर्व इसका छिलका उतारने की आवश्यकता नहीं होती जिसकी वजह से इसके स्वास्थ्यवर्धक गुण कम नहीं होते। छिलका उतारने की विधि को 'पर्लिंग' (Pearling) कहा जाता है, परन्तु इस विधि में छिलके के साथ–साथ स्वास्थ्यवर्धक गुणों वाली 'एल्यूरोन सतह' (Aleurone layer) भी निकल जाती है। अतः विभिन्न खाद्य उत्पादों जैसे कि चपाती बनाने हेतु, कुकीज (बिस्कुट) बनाने हेतु, ब्रेड व दलिया आदि के लिए छिलका रहित जौ का उपयोग अधिक सरल व बेहतर है। भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में किए गए प्रयोगों में पाया गया है कि छिलका रहित जौ को गेहूँ के आटे के साथ मिश्रित करके अधिक रेशे (फाइबर) वाली स्वास्थ्यवर्धक चपातियाँ बनाई जा सकती हैं। आजकल बाजार में बहु–अन्न आटा (Multigrain flour) भी उपलब्ध है जिसमें जौ का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार का आटा हम घर पर भी तैयार कर सकते हैं जिसमें 5–20 प्रतिशत तक जौ (स्वादानुसार) व अन्य अन्न मिलाए जा सकते हैं। इसी प्रकार गेहूँ के आटे के साथ छिलका रहित जौ का आटा मिलाकर स्वास्थ्यवर्धक बिस्कुट भी बनाए जा सकते हैं। जौ के दानों में बीटा–ग्लूकन की मात्रा अधिक होती है, जो कि खून में कोलेस्ट्रॉल व ग्लूकोज के स्तर को कम करती है। अतः जौ का लगातार सेवन हृदय रोगों व मधुमेह से बचाव में उपयोगी हो सकता है। जौ के दानों में एंटी–आक्सिडेंट खासतौर पर विटामिन–ई की मात्रा भी अन्य अनाजों की अपेक्षा अधिक है जो कि हमें विभिन्न व्याधियों से बचाता है। भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में किए गए प्रयोगों में छिलका रहित जौ कि प्रजातियाँ चिन्हित की गई हैं जिनमें बीटा–ग्लूकन की मात्रा अधिक है। अतः स्वास्थ्यवर्धक जीवन के लिए छिलका रहित जौ को अपने जीवन का हिस्सा बनाएं।

तालिकाः करनाल में उगाई गई छिलका रहित जौ में बीटा–ग्लूकन का प्रतिशत

जौ की प्रजाति	बीटा–ग्लूकन की मात्रा (शुष्क भार प्रतिशत)
बी.एच.एस. 352	6.1
डोलमा	6.8
एच.बी.एल. 276	5.8
गीतांजली	5.1
करन 16	4.8

छिलका रहित जौ के दाने

जौ : एक स्वास्थ्यवर्धक अन्न

दिनेश कुमार, जोगेन्द्र सिंह, स्नेह नरवाल, योगेश कुमार, अनिल खिप्पल, सत्यवीर सिंह एवं अजीत सिंह खरब

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारतीय आयुर्विज्ञान पत्रिका के 2010 में छपे एक लेख के अनुसार अगले 10–15 वर्षों में विश्व के कुल हृदय रोगियों में से 40–60 प्रतिशत संख्या भारतीय/एशियाई मूल के लोगों की होगी। भारत को विश्व की मधुमेह राजधानी भी कहा जाता है। अधिक हृदय रोग व मधुमेह होने का कारण अधिकांशतः आनुवंशिक हो सकता है, परन्तु इन बिमारियों में हमारे खान–पान व रहन–सहन का भी बहुत योगदान है। बढ़ते आधुनिकीकरण के चलते हमारी जीवन शैली व खान–पान में काफी बदलाव आया है, अब शारीरिक श्रम कम हो रहा है तथा जंक फूड का उपयोग ज्यादा हो रहा है। अतः हमें अपने खान–पान में कुछ ऐसा सम्मिलित करना चाहिए जिसके लिए अधिक प्रयास भी न करना पड़े व भोजन स्वास्थ्यवर्धक भी हो जाए। उत्तर भारत में चपाती भोजन का एक मुख्य अंग है। यदि चपाती के लिए स्वास्थ्यवर्धक/गुणकारी आटा प्रयोग हो तो काफी हद तक हम जीवन शैली सम्बन्धित बिमारीयों से बच सकते हैं। विश्व स्तर पर किए गए विभिन्न परीक्षणों में यह पाया गया है कि जौ एक ऐसा अन्न है जिसमें घुलनशील रेशा बीटा–ग्लूकन अधिक मात्रा में पाया जाता है। बीटा–ग्लूकन खून में कोलेस्ट्रॉल व शुगर की मात्रा को कम करता है। अतः जौ का नियमित सेवन हमें हृदय रोगों व मधुमेह से बचा सकता है। जौ में विटामिन–ई भी अन्य अन्न की अपेक्षा

अधिक होता है, जो कि प्रति–ऑक्सीकारक (Anti-oxident) का कार्य करता है। प्रति–ऑक्सीकारक हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में मदद करते हैं।

जौ एक प्राचीन काल से अंगीकृत अन्न है तथा आज भी हम पूजा व हवन में केवल जौ को शामिल करते हैं। परन्तु समय के साथ हमने इस प्रकृति के वरदान को भुला दिया। जौ को गेहूँ के आटे के साथ मिश्रित करके स्वास्थ्यवर्धक चपाती बनाई जा सकती है। स्वादानुसार जौ को 5–20 प्रतिशत तक मिलाया जा सकता है। आज कल बाजार में बहु–अन्न आटा (Multigrain flour) उपलब्ध है जिसमें जौ भी होता है। इसी प्रकार आप बिस्कुट बनवाने में भी जौ का आटा मिला सकते हैं। आजकल जौ सहित बहु–अन्न ब्रेड भी उपलब्ध है जिसका सेवन मैदे की ब्रेड से बेहतर हो सकता है। अतः जौ का अधिक से अधिक सेवन करें व अच्छा स्वास्थ्य पाएं।

कृषि में जल का उचित उपयोग : आने वाले समय की माँग

अनिता मीणा एवं अजय वर्मा

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व में जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि में किया जाता है। वर्तमान में अनुमानतः कुल जल का 59 प्रतिशत कृषि में, 23 प्रतिशत उद्योगों में और शेष 8 प्रतिशत का उपयोग घरेलू दैनिक कार्यों हेतु किया जाता है। कृषि कार्यों हेतु विश्व स्तर पर लगभग 1.5 हैक्टर क्षेत्रफल में 2000 से 2555 घन किलोमीटर जल का उपयोग प्रति वर्ष किया जाता है। ऐसा मानना है कि वर्ष 2030 तक 71 प्रतिशत वैश्विक जल का उपयोग कृषि कार्यों में किया जाएगा। अपने देश में भी जल का मुख्य उपयोग कृषि में सिंचाई के लिए होता है। इसी वजह से देश की पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के विकास को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है और बहुत उद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएँ जैसे – भाखड़ा नांगल, हीराकुंड, दामोदर घाटी, नागार्जुन सागर, इंदिरा गांधी नहर, परियोजना आदि शुरु की गई हैं। भारत में आज भी जल की मांग, सिंचाई की आवश्यकताओं के लिए अधिक है। धरातलीय जल और भूजल का सबसे अधिक उपयोग कृषि में ही होता है। इसमें धरातलीय जल का 89 प्रतिशत और भूजल का 92 प्रतिशत तक उपयोग किया जाता है। जबकि औद्योगिक क्षेत्र में, सतह जल का केवल 2 प्रतिशत और भूजल का 5 प्रतिशत भाग ही उपयोग में लाया जाता है। घरेलू कार्यों में धरातलीय जल का उपयोग भूजल की तुलना में अधिक है। चित्रों से स्पष्ट है कि कुल जल प्रयोग में कृषि सेक्टरों का हिस्सा दूसरे क्षेत्रों से अधिक है। भविष्य में इसका उपयोग और अधिक बढ़ने की संभावना है।

जल की कमी

अब दुनिया में पानी की कमी एक विकट समस्या का रुप ले चुकी है। और हर देश इस से प्रभावित है। अमेरिका से लेकर मध्यपूर्व और भारत से लेकर अफ्रीका के देशों में पानी की समस्या लगातार विकराल होती जा रही है। दरअसल शहरों का फैलाव होता जा रहा है और नई–नई जगहों पर नए–नए शहरों को बसाया जा रहा है जिसके परिणामस्वरुप जलस्तर लगातार नीचे जा रहा है। विश्व की लगभग 16 प्रतिशत जनसंख्या भारत में है जबकि उपलब्ध जल की मात्रा 4 प्रतिशत ही है। भारत ने पहली राष्ट्रीय जलनीति वर्ष 1987 में स्वीकृत की थी, जिसका उद्देश्य–जल स्त्रोतों का संरक्षण, बाढ़ प्रबंधन व नियंत्रण व जल के उचित दोहन को सुनिश्चित करके कृषि विकास को सुनिश्चित करना है। जल के महत्व को देखते हुए वर्ष 2007 को 'जल वर्ष' घोषित करते हुए, भारत सरकार ने कृषि क्षेत्र में जल की समय पर, सही मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई परियोजनाओं को समय पर पूरा करके तथा क्षतिग्रस्त

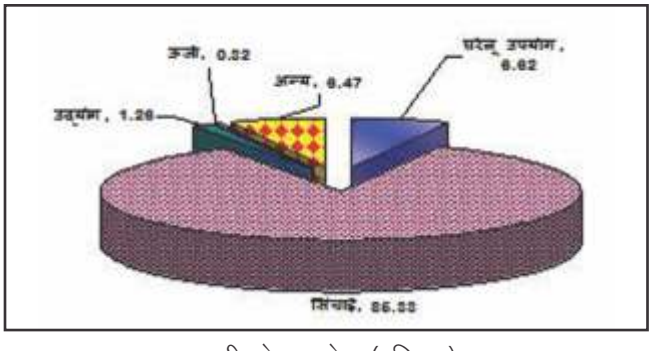

पानी के उपयोग (प्रतिशत)

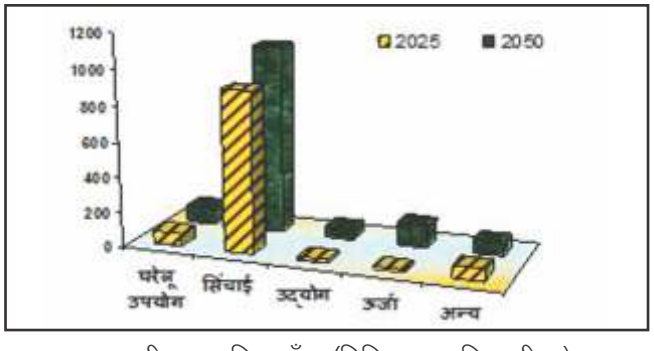

जल की अनुमानित माँग (बिलियन क्यूबिक मीटर)

फव्वारा विधि से गेहूँ में सिंचाई

ड्रिप विधि से गेहूँ में सिंचाई

सिंचाई परियोजनाओं की मरम्मत व सुधार को प्राथमिकता प्रदान की है।

पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्र जैसे पश्चिम बंगाल और बिहार में भी मानसून के मौसम में कम वर्षा व इसकी असफलता सूखे जैसी स्थिति बना देती है जो कृषि के लिए हानिकारक होती है। कुछ फसलों के लिए वर्षा जल की कमी सिंचाई को और भी आवश्यक बनाती है। उदाहरण के लिए चावल, गन्ना, जूट आदि के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है जो केवल सिंचाई द्वारा ही सम्भव है। सिंचाई की समुचित व्यवस्था ने ही बहुफसलीकरण प्रक्रिया को संभव बनाया है। ऐसा भी पाया गया है कि सिंचित भूमि में कृषि की उत्पादकता असिंचित भूमि की अपेक्षा ज्यादा होती है क्योंकि अधिक उपज देने वाली फसलों के लिए भी नियमित न्यूनतम नमी आवश्यक है जो केवल सिंचाई से ही संभव है।

हरित क्रांति से जल का अधिक उपयोग

देश में हरित क्रांति की अधिक सफलता पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सिंचाई की समुचित व्यवस्था से ही हुई है। इन राज्यों में (पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश) बोए गए क्षेत्र का 85 प्रतिशत भाग सिंचाई के अंतर्गत आता है और मुख्य फसलों गेहूँ और धान में सिंचाई, नहरों, कुओं और नलकूपों की सहायता से होती है। इससे पता चलता है कि ये राज्य अपने भूजल के एक बड़े भाग का उपयोग कर रहे हैं जिससे इन राज्यों के भूजल स्तर में कमी आ रही है और भूजल के अधिक दोहन से जल स्तर ज्यादा ही नीचे चला गया है। कुछ इसी तरह के हालात अन्य राज्यों में भी देखने को मिल रहे हैं। देश के ग्रामीण इलाकों में भी जलस्तर काफी नीचे चला गया है। पेयजल की कमी तो एक बड़ी समस्या है, लेकिन उससे भी बड़ा खतरा है भूजलस्तर का लगातार नीचे जाते रहना। कई राज्यों ने इस समस्या को बेहद गम्भीर माना है और जल संरक्षण नीति से पानी को बचाने का काम शुरु कर दिया है।

जल की बढ़ती अनुमानित मांग

कृषि के बढ़ते उत्पादन हेतु अधिक जल की आवश्यकता का अनुमान है क्योंकि एक टन अनाज उत्पादित करने के लिए लगभग 1000 टन जल की आवश्यकता होती है जबकि एक किलोग्राम धान उत्पादित करने के लिए 3 घनमीटर जल जरुरी है। समन्वित जल संसाधन विकास में राष्ट्रीय आयोग के मुताबिक देश में सतही जल की सिंचाई कुशलता सिर्फ 35 से 40 प्रतिशत है जबकि भूजल की सिंचाई कुशलता सिर्फ 65 प्रतिशत के लगभग है। अपनी बढ़ती जनसंख्या हेतु खाद्यान्नों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए खेती में जल की मांग निरंतर बढ़ रही है।

समन्वित जल संसाधन विकास के राष्ट्रीय आयोग ने अनुमान प्रस्तुत किया है कि सिंचाई हेतु जल की मांग 541 बिलियन क्यूबिक मीटर से बढ़कर वर्ष 2050 तक लगभग दुगुनी 1072 बिलियन क्यूबिक मीटर हो जाएगी। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि वर्ष 2025 में सिंचाई हेतु जल की उपलब्धता वर्तमान की 83 प्रतिशत से घटकर 73 प्रतिशत तक ही रह जाएगी। यह हकीकत है कि सिंचित कृषि क्षेत्र में विस्तार के कारण कृषि में जल की आवश्यकता तीव्र गति से बढ़ रही है। घटते हुए भूजल को रोकने के लिए धान की फसल के स्थान पर कम सिंचाई की आवश्यकता वाली फसलों को उगाना और सिंचाई जल में बचत करने वाली विधियों 'फव्वारा' व 'ड्रिप' को अपनाना लाभदायक व व्यावहारिक होगा।

गेहूँ एवं जौ की फसल के बाद ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती

अनिल खिप्पल, जोगेन्द्र सिंह, लोकेन्द्र कुमार, जसबीर सिंह*, रमेश चन्द्र वर्मा*, सुभाष कटारे, रिंकी, पूनम जसरोटिया एवं अमित कुमार शर्मा

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

*कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

गेहूँ एवं जौ के बाद लगभग 60–70 दिनों का सदुपयोग मूंग उगाकर किया जा सकता है। मूंग की फसल को ग्रीष्मकालीन मूंग कहते हैं। ग्रीष्मकालीन मूंग की सफलता कम अवधि वाली किस्मों की उपलब्धता पर निर्भर करती है जो 60–70 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

ग्रीष्मकालीन मूंग उगाने के लाभ

1. खेत का सदुपयोग एवं उपजाऊ शक्ति में सुधार।
2. उगाने में कम खर्च एवं अतिरिक्त आय।
3. पानी का सदुपयोग एवं भू–क्षरण से बचाव।
4. दाल–उत्पादन में वृद्धि एवं विदेशी मुद्रा की बचत।

ग्रीष्मकालीन मूंग की कृषि क्रियाएं

भूमि : दोमट या रेतीली दोमट। भारी जमीन में भी इसकी सफल खेती की जा सकती है।

किस्में : एम.एच.–421, एम.एच.–318 एवं एस.एम.एल. 668।

बिजाई का समय : मार्च का पूरा महीना। लेकिन गेहूँ–धान फसल चक्र में 15–20 अप्रैल।

बीज की मात्रा : 10–12 कि.ग्रा. प्रति एकड़।

बीज उपचार : बीज को बोने से एक दिन पहले या उसी दिन पानी में भिगोएं। ऐसा करने से हल्का व घुन लगा हुआ बीज पानी के ऊपर तैर जायेगा जिसको बाहर निकाल दें। पानी में नीचे रहने वाला बीज तुरन्त निकाल कर सुखा लेना चाहिए। दलहनी फसलों में राइजोबियम (जीवाणु खाद) से बीज उपचार करें।

बिजाई का तरीका : खेत में नमी पूरी हो ताकि बीज का जमाव पूरा हो सके। बिजाई हमेशा लाईनों में करें तथा लाईनों का फासला 20 से 25 सें. मी. रखें। तप्पड़ में मूंग की जीरो ड्रिल से बिजाई करने से समय की बचत, कम खर्च व ज्यादा पैदावार होती है।

उर्वरक प्रबन्धन : 35 कि.ग्रा. डी.ए.पी. प्रति एकड़ बिजाई के समय।

खरपतवार प्रबन्धन : पैंडीमेथालिन (स्टाम्प–20 ई.सी.) एक लीटर मात्रा 250 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के तुरन्त बाद छिड़काव करें।

सिंचाई :– पहली सिंचाई बिजाई के 20–25 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई इसके 15–20 दिन के अन्तराल पर करें।

ग्रीष्म कालीन मूँग की फसल

जीरो टिलेज

अनिल खिप्पल, रमेश कुमार शर्मा, जोगेन्द्र सिंह, लोकेन्द्र कुमार, जसबीर सिंह*,
रमेश चन्द्र वर्मा*, सुभाष कटारे, रिंकी, पूनम जसरोटिया एवं अमित कुमार शर्मा
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
*कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

किसानों की खेती में लागत घटाने व आमदनी बढ़ाने के लिए वैज्ञानिकों ने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया जो खेत को जुताई किए बिना बिजाई कर सकती है। यह गेहूँ बिजाई की एक बहुउपयोगी और लाभकारी तकनीक है। जीरो टिलेज (शुन्य जुताई) से बिजाई के लिए डिजाईन की गई मशीन को जीरो टिल ड्रिल कहते हैं जिसके फाले चाकूनुमा होते हैं। इस मशीन से एक घंटे में 2 से 2.5 एकड़ खेत की बिजाई की जा सकती है। इस विधि में बीज की मात्रा तथा उर्वरक प्रबंधन पारंपरिक विधि की तरह ही है। जीरो टिलेज में बिजाई के पश्चात् सुहागा या पाटा न लगाएं। बिजाई से पहले बीज की गहराई, खाद व बीज की मात्रा को आवश्यकतानुसार नियमित करें।

लाभ :–

- इस पद्धति से बिजाई करने पर खेत की तैयारी में लगने वाले समय की बचत होती है।
- बिजाई 10 से 15 दिन पहले भी की जा सकती है।
- इस विधि द्वारा गेहूँ की दोनों ही प्रकार की बिजाई (समय से एवं देर से) की जा सकती है।
- इस विधि से पहली सिंचाई के बाद गेहूँ की फसल पीली नहीं पड़ती।
- मंडूसी, करनाल बंट, पाउडरी मिल्ड्यू व दीमक का प्रकोप भी कम होता है।
- इस तकनीक से गेहूँ की बिजाई में पानी व मजदूरी की बचत होती है।
- ईंधन (डीजल) की बचत।
- मशीनरी (ट्रैक्टर, हैरौ, व ड्रील इत्यादि) की घिसाई भी कम होती है।
- जुताई करके बोई गई गेहूँ के बराबर या थोड़ी अधिक उपज प्राप्त होती है।
- इस विधि से बोई गई गेहूँ गिरती भी कम है।
- इस विधि से आइसोप्रोटूरोन प्रतिरोधी मंडूसी का उचित प्रबन्धन होता है।
- इस विधि से 2,000 से 2,500 रू॰ प्रति एकड़ की बचत होती है।
- अंतस्थ ताप (टर्मिनल हीट) से भी फसल का बचाव होता है।

जीरो टिलेज विधि द्वारा गेहूँ की बिजाई

जीरो टिलेज विधि द्वारा बोई गई गेहूँ की फसल

सुरक्षित बीज भंडारण – मुख्य सावधानियाँ

अनिल खिप्पल, रमेश कुमार शर्मा, जोगेन्द्र सिंह, लोकेन्द्र कुमार, जसबीर सिंह*, रमेश चन्द्र वर्मा*,
सुभाष कटारे, रिंकी, पूनम जसरोटिया, अमित कुमार शर्मा एवं इन्दु शर्मा

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
*कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

- बीज को रोग मुक्त क्षेत्र से ही काटना चाहिए। कटाई के समय स्वस्थ पौधों से ही बीज लें। बीज पूर्ण रुप से परिपक्व होना चाहिए। उचित नमी का परिक्षण करके कटाई का निर्णय लें।
- बीज में 8–10 प्रतिशत तक नमी होनी चाहिए। अधिक नमी वाले बीज को पक्के फर्श पर फैलाकर समय समय पर उलट–पलट कर सुखाएं।
- अधिक नमी वाले बीज में एस्पर्जिलस, राइजोपस, आल्टरनेरिया, पेनिसिलियम एवं फ्यूजेरियम नामक फफूंद जल्दी आ जाती है। कवकों के प्रभाव से बीज अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। कवकों की वजह से भंडारण कक्ष भी दूषित हो जाता है।
- संसाधन क्षेत्र की अच्छी तरह से सफाई करें। इसमें पुराने व दूसरी किस्म के बीज न हों।
- मशीनों की अच्छी तरह से सफाई करनी चाहिए। एक भी दाना रोग जनित नहीं रहना चाहिए।
- बीज के अन्दर व सतह पर मिट्टी नहीं होनी चाहिए। मिट्टी में कीटाणु ज्यादा संख्या में होते हैं।
- बीज कीड़े–मकोड़े से भी मुक्त होना चाहिये। कीड़े बीज की अंकुरण क्षमता को कम कर देते हैं, तथा उत्पाद की मात्रा को भी कम कर देते हैं।
- शोधन उपचार के बाद ही बीज को भंडारण कक्ष में रखना चाहिए।
- चूंकि पुरानी बोरी रोग एवं कीटों से ग्रसित होती है और इसमें दूसरी फसल के बीज के मिश्रण होने की सम्भावना रहती है इसलिए बीज को नई बोरी में रखना चाहिए। फिर भी यदि पुरानी बोरियों का इस्तेमाल करना हो तो उन्हें अच्छी तरह से साफ कर कीट (मेलाथियान 5 मी. ली. प्रति लिटर पानी) एवं कवकनाशक से उपचारित कर लें।
- बीज का भंडारण ठण्डे व सूखे स्थान पर करना उचित है।
- अधिक तापमान पर रखने पर कवकों की संख्या बीज में अधिक हो जाती है।
- बीज को फर्श के ऊपर लकड़ी के पट्टों की चौखट पर रखें। इससे बीज में हवा का आदान प्रदान ठीक रहता है।
- इन पट्टों के ऊपर बीज को 1000 गेज की पॉलीथिन की चादर या बांस की चटाई पर रखना चाहिए ताकि उनमें नमी प्रवेश न करे।
- भंडारण करने से पूर्व, बीज का अंकुरण परीक्षण कराने के उपरान्त उचित कवकनाशक रसायन से उपचारित करें।

लकड़ी के पट्टों पर गेहूँ का भंडारण

लकड़ी के पट्टों पर भंडारण की गई गेहूँ को पॉलिथीन से ढकना

गेहूँ के बीज को विटावेक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। बीज का अंकुरण परीक्षण स्वयं भी किया जा सकता है। इसके लिए 100 बीजों को 3 से 4 घण्टे भिगोकर गिली बोरी में लपेट कर 48 घंटे के लिए छाया में रखें और उसके बाद अंकुरित बीजों की गिनती कर लें।

- बीज को एक निश्चित अवधि के लिए ही भंडारण कक्ष में रखना चाहिए। उपचार के उपरान्त जल्दी व समय पर वितरण कर देना ठीक रहता है।
- वितरण से पूर्व पादप रोग प्रयोगशाला में बीज की जाँच करा लेनी चाहिए, जिससे अंकुरण व बीमारी का पता लग सके।
- बीज की मात्रा कम है तो फंफूदनाशक रसायन के चूर्ण द्वारा ड्राई ड्रेसिंग ड्रम में हिलाकर बीज को उपचारित किया जा सकता है।
- बीज भंडार की स्थापना उचित जगह पर करें। भंडारण कक्ष को साफ सुथरा, उचित प्रकाश वाला होना चाहिए।
- इसमें धूम्रपान कभी न करें।

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान में जौ के बढ़ते कदम

जोगेन्द्र सिंह, दिनेश कुमार, विष्णु कुमार, अनिल खिप्पल, लोकेन्द्र कुमार,
अजीत सिंह खरब, सत्यवीर सिंह एवं इन्दु शर्मा
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ भारत की एक महत्वपूर्ण औधोगिक फसल है जो कि गेहूँ, चावल, मक्का के बाद चौथे स्थान पर जगह बनाए हुए है। यह फसल मुख्यतः रबी मौसम में भारत के मैदानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में उगायी जाती है। जौ को उस स्थान पर भी उगाया जा सकता है जहां पर गेहूँ को उगाना सम्भव नहीं है। भारत में जौ को परम्परागत रुप से गरीब आदमी की फसल समझा जाता है क्योंकि इस फसल को अन्य खाद्यान्न फसलों की अपेक्षा कम लागत की आवश्यकता होती है। इसके अलावा जौ को कठिन वातावरण जैसे कि सूखा, ठण्डा, क्षारीय, सीमान्त भूमि में अच्छे ढंग से उगाया जा सकता है। भारत में इसके मुख्य उत्पादक क्षेत्र, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, जम्मू–कश्मीर के कठुआ एवं हिमाचल के ऊना एवं पोंटा घाटी है।

जौ भारत में विभिन्न रुपों में उपयोग में लाया जाता है जैसे पशुओं के आहार व चारे के रुप में, कारखाने में ब्रुईंग एवं माल्ट के रुप में, खाद्य पदार्थ के रुप में इत्यादि। परम्परागत तौर से भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी लोग छिलका रहित जौ को बड़े चाव से खाते है। जबकि मैदानी क्षेत्रों में जौ से बने सत्तू और मिसी रोटी खाने का प्रचलन रहा है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि गर्मी के दिनो में सत्तू शरीर को शीतलता प्रदान करता है। इसके अलावा जौ बीटा–ग्लूकन का एक अच्छा स्रोत है जो कि शरीर के कॉलेस्ट्रोल को कम करने में मदद प्रदान करता है। यदि डायबिटीज के मरीज जौ का इस्तेमाल करते है तो यह रक्त शर्करा (ग्लूकोज) को नियन्त्रित करने में मददगार साबित हो सकता है। इन सभी पहलूओं को ध्यान में रखते हुए भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान जौ पर शोध कार्य कर रहा है।

माल्ट सुधार कार्यक्रम : माल्ट की बढ़ती हुई माँग एवं किसानों के लाभ को ध्यान में रखते हुए भारत में अनुबंध खेती की शुरुआत हुई ताकि किसानों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य उनके खेत पर ही मिल सके। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उच्च उपज एवं रोग प्रतिरोधी, द्विपंक्ति वाली किस्में विकसित की गई तथा अग्रिम पंक्ति प्रर्दशन आयोजित किए गए।

पशु आहार सुधार कार्यक्रम : भारत में किसानों की आर्थिक स्थिति खेती के साथ–साथ पशुपालन पर भी निर्भर करती है। पशु का स्वास्थ्य एवं दूध की अच्छी गुणवत्ता के लिए अच्छे चारे की आवश्यकता होती है इसके लिए जौ का चारा उत्तम समझा जाता है क्योंकि इसके दाने में उपस्थित पोषक तत्व मक्का, जई, गेहूँ, ज्वार, के साथ तुलनात्मक रूप से बराबर है यद्यपि पोटाशियम एवं विटामिन–ए दूसरे मुख्य अन्न की अपेक्षा अधिक पाए जाते हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान एवं इसके समन्वित केन्द्रों ने अच्छी उपज तथा रोग प्रतिरोधी अनेकों किस्में विकसित की है तथा लगातार नई नई किस्में विकसित करने में प्रयासरत है।

अन्न सुधार कार्यक्रम : छिलका रहित जौ स्वास्थ्यवर्धक अन्न समझा जाता है क्योंकि इसके दाने में बीटा–ग्लूकन उपस्थित होता है जो एक प्रकार का घुलनशील रेशा (फाईबर) है। यह खून में उपस्थित कॉलेस्ट्रोल व शर्करा (शुगर) की मात्रा को कम करता है। अतः जौ का नियमित सेवन करने से हम हृदय रोगों व मधुमेह से छुटकारा पा सकते हैं। भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान ने इस दिशा में अनुसंधान कार्य शुरु किया है। इसके अन्तर्गत पहले से अनुमोदित किस्मों का मूल्यांकन करना तथा ईकारडा (ICARDA) से प्राप्त छिलका रहित जननद्रव्य का भारतीय परिस्थिति में अनुकूलन एवं रोग प्रतिरोधकता की जाँच के बाद नई किस्म के रुप में विकसित करना है। वर्ष 2014–15 के दौरान लगभग 200 जननद्रव्य लाईनों का मूल्यांकन किया गया है।

द्विउद्देशीय जौ सुधार कार्यक्रम : जौ द्विउद्देशीय फसल के रुप में कारगर सिद्ध हो रहा है। इसका उपयोग राजस्थान, दक्षिण पश्चिमी पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में हरे चारे के रुप में पशुओं को खिलाने के लिए किया जाता है। क्योंकि फसल को हरा चारा एवं दाना दोनों रुपों में उपयोग में लाया जाता है, इसलिए इसको द्विउद्देशीय जौ कहते हैं। मैदानी क्षेत्रों में हरे चारे के उपयोग के लिए बिजाई के 50–55 दिनों के बाद फसल की कटाई की जाती है जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में बिजाई के 70–75 दिनों के बाद कटाई की जाती है। उसके उपरान्त फसल को पुनः से उगने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान के समविन्त केन्द्रों ने अच्छे हरे चारे की मात्रा, अच्छे दानों की उपज एवं रोग रोधिता को ध्यान में रखते हुए नई–नई किस्में विकसित की हैं।

तालिका : रोग प्रतिरोधी एवं अधिक उपज देने वाली किस्में

उद्देश्य	किस्म	रोग प्रतिरोधी	जिन क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त पाई गई है
1. माल्ट	डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 52	पीला रतुआ एवं पर्ण झुलसा	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 92	भूरा रतुआ	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101	पर्ण झुलसा	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73		उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में देरी से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 64	पीला रतुआ एवं पर्ण झुलसा	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में देरी से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 91		उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में देरी से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
2. पशु आहार	बी.एच. 902		उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	बी.एच. 393	पीला एवं भूरा रतुआ मध्यम रुप से सिस्ट नेमाटोड के लिए रोधिता	हरियाणा में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	आर.डी. 2592	पीला एवं भूरा रतुआ मध्यम रुप से सिस्ट नेमाटोड के लिए रोधिता	राजस्थान में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	जे.बी. 58	पीला एवं काला रतुआ एफिड के लिए रोधिता	मध्य प्रदेश के बारानी क्षेत्रों के लिए

	एच.यू.बी. 113	रतूआ एवं स्पॉट ब्लॉच के लिए रोधिता	पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, आसाम
3. द्विउद्देशीय	आर.डी. 2552	पीला रतुआ	हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल एवं उत्तर पूर्वी राज्य
	आर.डी. 2715		गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान के कोटा एवं उदयपुर मण्डल
	बी.एच.एस. 380	पीला रतुआ	हिमाचल एवं जम्मू–कश्मीर के बारानी क्षेत्रों के लिए
	आर.डी. 2035		उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
4. भोज्य पदार्थ	डोलमा	पीला रतुआ	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में उगाने के लिए
	करण–16		उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में समय से बिजाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए
	गीतांजली		उत्तर प्रदेश के बारानी क्षेत्रों के लिए
	एच. बी.एल. 276		उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में समय से बिजाई एवं बारानी खेती के लिए
	बी.एच.एस. 352	रतुआ के लिए रोधिता	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में समय से बिजाई एवं बारानी खेती के लिए
	एन.डी.बी. 943		उत्तर प्रदेश में उगाने के लिए

जौ की बीज उत्पादन तकनीकें

विष्णु कुमार, जोगेन्द्र सिंह, अजीत सिंह खरब, दिनेश कुमार, लोकेन्द्र कुमार, मदन लाल एवं इन्दु शर्मा

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जौ के बीज उत्पादन के लिये किसान भाई अच्छी गुणवत्ता वाले प्रमाणित बीज का प्रयोग करें जिसकी आनुवंशिक शुद्धता लगभग 99 प्रतिशत हो, जमाव क्षमता अधिक हो एवं बीज में अन्य फसलों एवं शाकों के बीज की मात्रा नगण्य हो। बिजाई से पहले बीज को बाविस्टिन/वीटावेक्स 2 ग्राम/किग्रा अथवा टैबुकोनाजोल 1 ग्राम/किग्रा से उपचारित करें एवं बिजाई संयत्रों की अच्छी तरह से सफाई कर लें। बीज उत्पादन प्रक्षेत्र में अन्य जौ की प्रजातियों से बीज उत्पादन प्रजाति की दूरी कम से कम 3–5 मीटर रखना आवश्यक है।

किसान भाई खरपतवार नियंत्रण विधियों (हाथ से अथवा शाकनाशक से उपचार) का प्रयोग करें एवं अन्य किसी तरह की जौ की प्रजाति अथवा फसल के पौधे को जड़ सहित उखाड़ कर नष्ट करे दें। कटाई के वक्त जौ की फसल पकने पर कम्बाईन हारवेस्टर अथवा हाथ से कटाई करें एवं यह ध्यान रखा जाए कि फसल को अत्यधिक न पकने दें, जिससे जौ की बांलियां टूट कर खेत में न गिरने लगें। कटाई के बाद फसल का गोदामों में उचित नमी की मात्रा में सुरक्षित भंडारण करें। गोदामों में नमी की मात्रा का विशेष ध्यान रखें क्योंकि जौ नमी के प्रति संवेदनशील होने के कारण जल्दी खराब हो जाता है, अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है एवं अन्य कीटों को प्रकोप अधिक हो सकता है। गोदामों को भंडारण कीटों से मुक्त रखने के लिये धूम्रीकरण करें अथवा मेलाथियॉन/ डाईक्लोरोवोस से उपचारित करें एवं चूहा नाशकों का आवश्यकता होने पर उपयोग करें। निम्न तालिका के अनुसार अन्य सस्य क्रियाओं एवं फसल सुरक्षा उपायों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

बीज उपचार एवं बीज की मात्रा	
बीज का उपचार	थाईरम/वीटावेक्स 2–3 ग्राम/कि.ग्रा. अथवा टैबुकोनाजोल 1 ग्राम/कि.ग्रा.
बीज की मात्रा	100 कि.ग्रा./हैक्टर
लाइनों के मध्य की दूरी	23 से.मी.(माल्ट जौ– 18 से.मी.)
उर्वरकों की मात्रा	
नाइट्रोजन	60 कि.ग्रा./हैक्टर (माल्ट जौ– 90 कि.ग्रा./हैक्टर) (आधी बिजाई के समय एवं आधी पहली सिंचाई पर)
फॉस्फोरस	40 कि.ग्रा./हैक्टर (पूरी मात्रा बिजाई के समय)
पोटाश	20 कि.ग्रा./हैक्टर (पूरी मात्रा बिजाई के समय)
सिंचाई	
पहली सिंचाई	बिजाई के 30–35 दिन बाद
दूसरी सिंचाई	बिजाई के 65–70 दिन बाद
तीसरी सिंचाई	बिजाई के 90–95 दिन बाद
खरपतवार नियंत्रण	
चौड़ी पत्ती के लिए	मेटसल्फ्यूरॉन (8 ग्राम) अथवा 2,4–डी (500 ग्राम)
संकरी पत्ती के लिए	पीनोक्साड़ेन (400 ग्राम)
उपरोक्त शाकनाशकों को बिजाई के 30–35 दिन बाद 120–200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।	
फसल सुरक्षा	
पीला रतुआ	प्रोपीकोनाजोल (टिल्ट 25 ई .सी.)/0.1 प्रतिशत फोलिकर 250 ईसी अथवा बेलिटोन 25 डब्ल्यू.पी., 500 मिली/500 लीटर पानी/हैक्टर प्रयोग करें।
चेपा या माहूँ	रोगोर 2 मिली/लीटर अथवा इमिडाक्लोपरिड 200 की 100 मिली मात्रा/हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
कटाई का समय	मार्च के अंत में या अप्रैल के प्रथम सप्ताह में
कटाई की विधि	कम्बाईन हार्वेस्टर अथवा हाथ से कटाई
भंडारण	जौ की जमाव क्षमता बनाए रखने के लिए उचित तापमान एवं नमी पर भंडारण करें ।

प्रयोगशाला स्तर पर नमक प्रतिरोधी किस्मों की पहचान

राकेश कुमार, माम्रुथा एच. एम., अमनदीप कौर, निशा वालिया, सुनिधि चोपड़ा एवं मनोज

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत तीन दिशाओं से तटीय क्षेत्र से घिरा हुआ है तटीय क्षेत्र की भूमि में नमक की मात्रा सामान्य से अधिक होती है अतः वहाँ पर गेहूँ उपजाने के लिए कुछ विशेष किस्मों का चुनाव करना अति आवश्यक है जो इस प्रकार की लवणयुक्त भूमि में उगने तथा अच्छे पैदावार देने योग्य हो।

नमक प्रतिरोधी किस्म की पहचान के लिए प्रयोगशाला स्तर पर एक तकनीक का विकास किया गया जिसमें नमक प्रतिरोधी किस्म (खर्चिया 65), नमक संवेदनशील (एच.डी. 2967) तथा छहः अन्य किस्मों का प्रयोग किया गया। इस प्रक्रिया में सभी किस्मों के बीजों को पेट्री प्लेट में फिल्टर पेपर पर रखने के बाद उन्हें अलग–अलग नमक की मात्रा (0 से 300 मि. मो.) वाले पानी से उपचारित किया गया। इसके बाद उन्हें अंधेरे में 22–24° से. तापमान पर रखा गया तथा हर दो दिन के अंतराल के बाद उन्हें फिर से अलग–अलग नमक की मात्रा वाले पानी से उपचारित किया गया। पांच दिनों के बाद सभी प्लेटों से ढक्कन उतारने के बाद उन्हें रोशनी में 22–24° से. तापमान में रखा गया। बीस दिनों के बाद सभी किस्मों का अवलोकन तथा आकलन किया

गया। आकलन में सभी किस्मों के बढ़ने की दर, पौधे की उंचाई, जड़ की लम्बाई, आदि को मापा गया। इस आकलन के आधार पर नमक के प्रति पूर्णरूप से संवेदनशील तथा प्रतिरोधी किस्मों को पहचाना जा सका। अतः इस तकनीक का प्रयोगशाला स्तर पर प्रयोग करके लवणयुक्त भूमि में उपजाने योग्य गेहूँ तथा अन्य फसलों की किस्मों का मुख्य रूप से चुनाव किया जा सकता है।

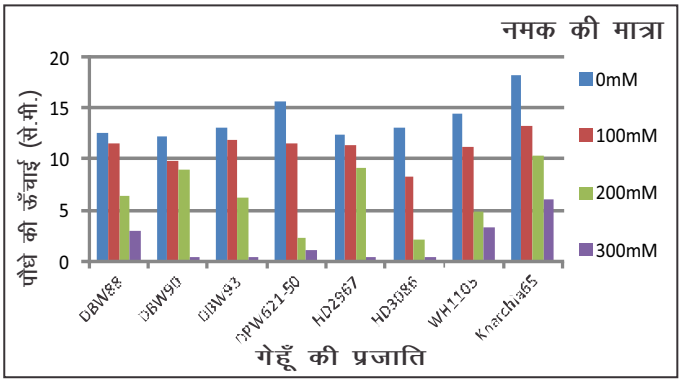

डी.बी.डब्ल्यू. 93 : प्रायद्वीपीय क्षेत्र हेतु नवीन प्रजाति

संजय कुमार सिंह, सुरेश कुमार, कर्णम वेंकटेश एवं विनोद तिवारी

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्र (महाराष्ट्र एवं कर्नाटक राज्य) में गेहूँ रबी की प्रमुख फसलों में शामिल है। इन क्षेत्रों में जलवायु के अनुसार उच्च तापमान पाया जाता है तथा लगभग सभी क्षेत्रों में पानी की कम उपलब्धता गेहूँ की कम उपज का एक प्रमुख कारक है। साथ ही काला तथा भूरा रतुआ एवं पर्ण झुलसा रोग प्रमुख जैवीय समस्या हैं। अतः इन क्षेत्रों के लिए ऐसी प्रजातियों की आवश्यकता है जो कम सिंचाई में भी अधिक उपज दे सकें तथा विभिन्न रोगों के प्रति अवरोधी हों। इस पारिस्थितिकी के अनुसार भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल ने अनुसंधान की शटल प्रजनन विधि द्वारा गेहूँ की नवीन प्रजाति डी.बी.डब्ल्यू. 93 विकसित की है जिसे केंद्रीय प्रजाति विमोचन समिति ने प्रायद्वीपीय क्षेत्र में समय से तथा सीमित सिंचाई हेतु बुआई करने के लिए का. आ. 1228 (अ) द्वारा 07.05.2015 को अधिसूचित किया है।

अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ एवं जौ अनुसंधान परियोजना के समय से सीमित सिंचाई के परीक्षणों में डी.बी.डब्ल्यू. 93 की औसत उपज 29.3 कु./है. प्राप्त की गई जो अन्य जांचक प्रजातियों एन.आई. 5439 से 19.10 प्रतिशत तथा एन.आई.ए. डब्ल्यू. 1415 से 11.00 प्रतिशत अधिक थी। इस प्रजाति की उपज क्षमता 39.00 कु./है. पाई गई जो इन परीक्षणों में अन्य प्रजातियों की तुलना में सर्वाधिक थी। सस्य परीक्षणों में भी इस प्रजाति ने वर्षा आधारित फसल की तुलना में एक सिंचाई की उपलब्धता पर अन्य जाँचक प्रजातियों की तुलना में सर्वाधिक 34.5 प्रतिशत अधिक उपज प्रतिक्रिया प्रदर्शित की। डी.बी.डब्ल्यू. 93 की बाली निकलने की अवधि 55–60 दिन तथा पकने की अवधि 90–120 दिन है। इसके पौधों की औसत ऊंचाई 60–65 से.मी. तथा एक हजार दानों का वजन 37 ग्राम है।

यह प्रजाति प्रायद्वीपीय क्षेत्र की प्रमुख बीमारियों जैसे भूरा रतुआ (रेस 77–5, 104–2) तथा काला रतुआ (रेस 40 ए, 117–6) के लिए उच्च प्रतिरोधी है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति करनाल बंट के लिए भी अति–अवरोधी (औसत 3.5 प्रतिशत) है जिसके कारण यह व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी उपयुक्त है। इस प्रजाति में उच्च प्रोटीन (14.6 प्रतिशत), हेक्टोलीटर भार (80.3 किलो/हे.ली.), आटा निकास दर (71.5 प्रतिशत) तथा शुष्क ग्लूटेन मात्रा (11.4 प्रतिशत) होने के कारण इसे उच्च गुणवत्ता के गेहूँ की श्रेणी में रखा गया है । इस प्रजाति में रोटी तथा ब्रेड बनाने वाले उच्च गुण भी हैं जो इसे प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त बनाते है। इसके अतिरिक्त डी.बी.डब्ल्यू. 93 प्रजाति में उच्च–पोषकीय गुण जैसे 50.9 पी.पी.एम. लौह तत्व, 46.0 पी.पी.एम. जिंक तथा 3.7 पी.पी.एम. येलो पिगमेंट भी मौजूद हैं। यह प्रजाति अपने इन्ही विशिष्ट गुणों के कारण प्रायद्वीपीय क्षेत्र में सीमित सिंचित अवस्था में समय से बुआई के लिए उपयुक्त है जिससे किसान भाई कम पानी की उपलब्धता में भी अधिक उपज एवं फायदा प्राप्त कर सकते हैं।

संस्थान की वेबसाइट : www.dwr.res.in

लेखकों के लिए दिशा-निर्देश

गेहूँ एवं जौ संदेश में छपने हेतु लोकप्रिय लेख साफ-साफ हस्तलिखित या डबल स्पेसिंग में टाईप किए हुए (तालिका, आकृति, फोटोग्राफ सहित) दो पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिएं। लेख में लेखक/लेखकों का पूरा नाम, पता व ई-मेल अवश्य लिखें। लेखकों से निवेदन है कि वे अपने लोकप्रिय लेख 31 मई तक पहले अंक (जनवरी-जून) के लिए एवं 30 नवम्बर तक दूसरे अंक (जुलाई-दिसम्बर) के लिए भेजें।

सम्पादक मंडल

अनुज कुमार, रणधीर सिंह, सत्यवीर सिंह, अंकिता झा एवं इन्दु शर्मा

तकनीकी सहायता

राजेन्द्र सिंह एवं जे.के.पाण्डेय

बुक पोस्ट

छःमाही मुद्रित सामग्री

सेवा में,

....

....

....

प्रेषक

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

पोस्ट बॉक्स 158, अग्रसेन मार्ग,

करनाल - 132 001 (हरियाणा), भारत

निदेशक, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा प्रकाशित

मुद्रित प्रति - 1000

Design & Print : SHRIKOSHI # 9812053552